सन्त-सेवा का समय अब कहां ? सोचो ! राजा शिवि ने एक पक्षी को रक्षा के लिये अपना मांस तोल दिया था, राजा दिलीप ने एक दीन गऊ को बचाने के लिये सिंह का अहार बनना स्वीकार कर लिया था, परन्तु अब वह समय गया बीता हुआ, अब तो नाम के राजा रह गये हैं, उनमें दया और परोपकार ढूढना अपने आप को धोका देना है। अच्छा आनन्द रहो हमारा भी परमात्मा रक्षक है। यह हाथी घोड़े, पल्टन और रिसाले हमारे किसी काम के नहीं, हमारा जो तात्पर्य था वह निष्फल हो गया। अच्छा कल्याण हो ! हम जाते हैं।

वशिष्ठ—(रोक कर) ठहरिये महात्मन ! जरा और ठहरिये। राजा मोह [redacted] होकर अपना कर्त्तव्य भूल रहे हैं, इन्हें एक बार फिर सोच लेने दीजिये। (दशरथ से) राजन् ! यह समय मोह में पड़ने का नहीं है, यह अवसर चिन्ता में उलझने का नहीं है। महर्षि विश्वामित्र को अपने द्वार से निराश न जाने दीजिये, जिस प्रकार हो सके इनकी इच्छा को पूर्ण कीजिये, जो ससार के क्लेशों को दूर करने वाले हैं उन्हें क्लेश कैसे हो सकता है ? जिनके नाममात्र से सब के बन्धन टूट जाते हैं, उन्हें कोई बन्धन में कैसे बांध सकता है ?

छुड़ा देते हैं प्राणी से जो माया मोह दुनियां का।
बिछाते हो उन्ही के वास्ते क्यों जाल ममता का॥
मनोरथ सन्त जन का और इनका नाम होने दो।
हुआ है जिस लिये अवतार वह भी काम होने दो॥

गाना (तर्ज—चौधवी का चान्द हो···)

राजन तुम्हें तो धर्म भुलाना न चाहिए।
बन्धन में मोह के कभी आना न चाहिए॥
भूमी का भार हरने को अवतार यह हुआ।
इस लोक हित में कोई बहाना न चाहिए॥
तुम पुत्र जानकर इन्हें ममता में फस गये।

पर ब्रह्म को तो मोह में लाना न चाहिए ।।
कर्तव्य जान अपना इन्हें भेज दो 'कुशल'।
सन्तों को खाली हाथ तो जाना न चाहिए ।।

दशरथ—अच्छा गुरुदेव ! आपकी और ऋषिराज की आज्ञा को सिर धरता हूं; धर्म की रक्षा के लिये मोह ममता को वश करता हूं। जाओ बेटा ! अब कुछ समय के लिये ऋषिराज के सग चले जाओ और ये जो आज्ञा दें उसे सच्चे मन से बजाओ (विश्वामित्र से) लीजिये महाराज ! इन बालकों का हाथ अपने हाथ में लीजिये :—

तुम्हें अर्पण है मेरी उम्र भर की जो कमाई है।
बड़ी मुश्किल से ईश्वर ने शक्ल इनकी दिखाई है ।।
लिया है हाथ में जो हाथ इस का मान भी रखना।
दया करके प्रभो रक्षा का इनकी ध्यान भी रखना ।।

विश्वामित्र—निश्चन्त रहो राजन् ! कल्याण हो ! आशाएं पूर्ण हों कोई संकोच न करो और चिन्ता रहित होकर अटल राज करो।

गाना

आनन्द रहो, चिरकाल जियो, संसार उजागर नाम रहे।
घर में, कुल में, जनताजन में, सुख शान्ति रहे आराम रहे ।।
यह आशीर्वाद हमारा है, जग में कल्याण तुम्हारा है।
ममता, माया व्यापे न तुम्हें, मद लोभ न मन में काम रहे ।।
चिन्ता छोड़ो, भ्रम दूर करो, ममता और मोह का नाम न लो।
वह जंगल फिर क्या जगल है ? जिस जंगल में श्रीराम रहे ।।
जब दुष्ट इन्हें दुख पहुंचायें, फिर दुष्ट दलन क्यों कहलायें।
जब शोक इन्हें ही व्याप गया, फिर कुशल कहां सुख-धाय रहें ?

(राम-लक्ष्मण से) आओ बेटा ! अब मेरे साथ आओ:—

छोड़ कर आराम सारे कुछ क्षणों के वास्ते।

अब करो कुछ काम भी योगी जनों के वास्ते ।।
नाम से उज्जवल तुम्हारे सूर्य-कुल का नाम हो ।
यश तुम्हारा हो जगत में और हमारा काम हो।।

राम—चलिये प्रभु !

नमस्कार गुरुदेव मम, पूज्य पिता प्रणाम ।
जाता हूं तन मन सहित,आज ऋषि के काम ।।

[विश्वामित्र का दोनों को लेकर जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(परदा जंगल)

[विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित प्रवेश]

राम—मुनिराज ! यह कौन सा स्थान है ।

विश्वामित्र—बेटा! यह भयंकर बन राक्षसों का स्थान है । यहाँ ताड़का नाम की एक प्रसिद्ध राक्षसी रहती है, जिसके द्वारा ऋषि समाज बडा कष्ट सहती है।

राम—उसका क्या वृतान्त है प्रभो !

विश्वामित्र—हे राम ! सुकेतुयक्ष एक परम भक्त था । उसने ब्रह्मा जी का तप करके एक सन्तान का वरदान पाया और उसके घर में ताड़का का जन्म हुआ । कन्या के योग्य हो जाने पर सुकेतु-यक्ष ने उसका विवाह जम्भासुर से कर दिया और कालातर में उसके मारीच नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ । कुछ समय पश्चात अगस्त्य मुनि ने सुकेतुयक्ष के किसी दुराचार पर क्रोधित होकर उसे भस्म कर दिया । इस पर यह दुष्ट ताड़का अपने पुत्र मारीच सहित मुनि को मारने दौड़ी । तब मुनि ने शाप दिया कि तुम दोनों राक्षस हो जाओ । उसी समय से यह पापिनी अपने पुत्र सहित इस बन में निवास करता है ।

राम—सत्य है महाराज ! ऋषियों को सताने का ऐसा ही फल होता है ।

विश्वामित्र—अच्छा अब सावधान हो जाओ; देखो, नाम लेते ही वह हत्यारी पत्थर बरसाती और घोर शब्द करती इसी ओर चली आ रही है। पहले उसे ठिकाने लगाओ।

राम—परन्तु भगवन! स्त्री का मारना तो अधर्म है।

विश्वामित्र—नहीं! जो स्त्री गौ, ब्राह्मण और सन्तों के लिये दुख-दाई है, उसके मारने में दोष नहीं, बल्कि बड़ाई है।

राम—तो फिर चिन्ता क्या है? उसे आने दीजिए और अपना पराक्रम दिखाने दीजिये।

ताड़का—(ललकारती हुई) अहार! अहार! भूखी का अहार!

राम—बस, वहीं ठहर मुरदार! यदि आगे पग बढ़ाया तो जान ले कि तेरा काल आया।

ताड़का—अरे मूर्खों! तुम तो मेरा आहार हो; आज तुम्हें भोजन बनाऊंगी और अपनी प्रचण्ड क्षुधा मिटाऊंगी।

राम—बस मिटा चुकी, अब परलोक यात्रा के लिये तैयार होजा।

[ताड़का का आगे बढ़ना और राम का बाण मार कर उसे समाप्त कर देना]

विश्वामित्र—धन्य हो बेटा! अच्छा पराक्रम दिखाया, एक ही बाण में दुष्टा को यमपुर पहुंचाया। अच्छा अब हमारे आश्रम में चलो, वहां तुम्हारे जल-पान का कुछ प्रबन्ध करेंगे।

राम—चलिये प्रभो!

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(विश्वामित्र का आश्रम)

विश्वामित्र—लो बेटा! आश्रम आ गया, पहले कुछ कन्द मूल फल खालो, फिर तुम्हें विद्या सिखाएंगे।

राम—महाराज! इसकी चिन्ता न कीजिये। खान-पान की कुछ इच्छा नहीं है, पहले विद्या ही सिखाइये।

विश्वामित्र—अच्छा तो देखो ! यह योग आसन है (आसन बताना) यह प्राणायाम करने की विधि है (विधि समझाना) और यह 'बला अतिबला नामक' विद्या है जिसका प्रभाव महान है। जिसके पास यह विद्या होती है उसे भूख-प्यास नहीं सतावी, निद्रा नहीं आती बल्कि आत्मा में बल और शरीर में शक्ति आती है !

राम—धन्य हो प्रभो ! धन्य हो ! अच्छा अब हमें कुछ शस्त्र-विद्या भी सिखाइये।

विश्वामित्र—बहुत अच्छा ! (सिखाते हुए) देखो यह सीधा बाण, यह पवन-बाण, यह अग्नि-बाण और यह दलन-बाण है। युद्ध में इन से बड़ा यश मिलता है।

राम—धन्य हो प्रभो !

विश्वामित्र—अच्छा बेटा ! लो अब हम तुम्हें महादेव जो के दिए हुए बाण देते हैं। इनका पराक्रम बहुत बड़ा है। ये तुम्हारी अनेक प्रकार से रक्षा करेंगे। इन विद्याओं का निरन्तर अभ्यास करते रहना।

राम—(बाण लेकर) अनुग्रह महाराज ! महा अनुग्रह ! अच्छा अब आप निश्चन्त होकर यज्ञ कीजिये और रक्षा का सारा भार हमारे ऊपर छोड़ दीजिये। हमारे होते आपके यज्ञ में कोई बाधा न होगी।

[विश्वामित्र का यज्ञ करना, राम-लक्ष्मण का बाण तानकर खड़े हो हो जाना और मारीच, सुबाहु का आना]

लक्ष्मण—भ्राता जी ! वह देखो, फिर घोर शब्द सुनाई पड़ रहा है। प्रतीत होता है कि उस राक्षसो के पक्षपाती आ पहुंचे हैं।

राम—आने दो ! हम भी उन्हीं की प्रतीक्षा में बैठे हैं !

मारीच—(आकर) ओ नीच बालक ! मेरी माता के घातक ! अब सावधान हो जा ! और अपनी ढिटाई का दण्ड भोगने को तैयार हो जा !

राम—आ ! ओ दुष्ट ! तुझे भी वही फल चखाता हूं; जहां तेरी माता गई है तुझे भी वहीं पहुचाता हूं ।

कर चुके विध्वस अब तक यज्ञ ऋषियों के बहुत ।
विघ्न डाले धार्मिक कामों में मुनियों के बहुत ॥
अब सड़ाई हो गया इनका हमारा बाण है ।
वास्तव में यह तुम्हारो मौत का सामान है ॥

मारीच - ओह !

होश कर और देख क्या है बाल तेरे सामने ।
आ गया मारीच बनकर काल तेरे सामने ॥

राम—चल ! अभिमानी ! परलोक-यात्रा को चल ! आपे से बाहर न निकल ।

[पवन-बाण मारना, मारीच का उड़ जाना]

सुबाहु—सम्भल, सम्भल ! अभी से इतना न उछल :—

भूल जाएगा चलाना इक घड़ी में तीर का ।
पड़ गया जो हाथ पूरा इस सुबाहू वीर का ॥

राम—दुष्ट ! यदि सामने आएगा तो तू भी वही दण्ड पाएगा ?

सुबाहु—अच्छा तो देख :—

अब पड़ा है सामना करना तुझे बलवान का ।
फल अभी मिल जाएगा मूरख तेरे अभिमान का ॥

राम—चल ! अधिक बात न बना, यम के द्वार चलकर नरक का ईंधन बन जा :—

जो हुआ मारीच का होगा वही तेरा भी हाल ।
देख मेरा बाण अब आता है बनके तेरा काल ॥

[बाण मारना, सुबाहु का मरना, लक्ष्मण का अन्य राक्षसों को मार गिराना]

विश्वामित्र—धन्य है बेटा ! धन्य है ! मेरी विद्या सफल हुई ।

राम—ऋषिराज यह सब आपके चरणों का प्रताप है ।

विश्वामित्र—अच्छा अब कुछ फल फूल खालो और फिर आश्रम में जाकर विश्राम करो।

राम—महाराज ! अभी कुछ आलस्य नहीं आया है। पहले आप आराम कीजिये। और हमें चरण-सेवा का सौभाग्य दीजिए।

विश्वामित्र—चिरंजीव रहो पुत्रो ! जगत में तुम्हारी कीर्ति फैले।

(विश्वामित्र का लेट जाना, राम-लक्ष्मण का चरण दबाना, जनक के दूत का आना]

दूत—(प्रणाम करके और पत्र देकर) महाराज ! मिथिलापुरी से यह सन्देश आया है।

[पत्र देकर जाना]

राम—मुनिराज ! इस पत्र में क्या वृतान्त लिखा है ?

विश्वामित्र—(पढकर) बेटा ! मिथिलापुरी के राजा जनक ने अपनी गुणवन्ती सपुत्री सीता का स्वयवर रचाया है और वर-वधु को आर्शीवाद देने के लिये हमें भी बुलाया है। उनका प्रण है कि जो शम्भु चाप को चढ़ायेगा, सीता को वही पायेगा।

लक्ष्मण—तब तो बड़ा ही रोचक दृश्य होगा महाराज !

विश्वामित्र—हां-हां, बड़े समारोह का समागम होगा।

राम—तो क्या उसे देखने के लिए हम भी जा सकते हैं ?

विश्वामित्र—क्यों नहीं ? हम प्रातःकाल तुम्हें लेकर चलेंगे। धनुषयज्ञ तो वास्तव में राजपुत्रों के लिये ही होने वाला है। हमें तो केवल देखने को बुलाया है।

राम—उपकार प्रभो !

[सबका विश्राम करना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा—जंगल)

[शिला रूप अहिल्या का पड़े हुए दिखाई देना]

राम—महाराज ! यह बन तो कुछ अनोखा ही प्रतीत होता है। न पशु विचरते हुए दिखाई देते हैं न पक्षी बोलते हुए सुनाई देते हैं। इसका क्या कारण है मुनिराज !

विश्वामित्र—इसका कारण ? वह देखो सामने पड़ी हुई पत्थर की शिला है।

राम—पत्थर की शीला ? इसका क्या वृतान्त है प्रभो ?

विश्वामित्र—बेटा ! यह शिला किसी समय अहिल्या नामक बड़ी सुन्दर और कोमल स्त्री थी तथा महर्षि गौतम बड़े कर्मकांडी और धर्मपरायण इसके पति थे। एक बार जबकि गौतम ऋषि अर्द्ध रात्री के समय गंगा-स्नान को चले गये तो इन्द्र इसके रूप पर मोहित होकर गौतम होकर ऋषि का रूप बनाकर उनके घर चला आया और इसके साथ व्यभिचार किया। कुछ समय पश्चात गौतम भी लौट आये। इस स्त्री ने इन्द्र को छिपाकर ऋषि से झूठ बोला, इस पर ऋषि ने क्रोधित होकर इसे शाप दिया कि तू पत्थर की हो जा। यह शाप सुनकर अहिल्या बहुत डरी और अनेक प्रकार से विनती करने लगी; तब ऋषि ने दया करके यह वरदान दिया कि जब सूर्य-वंश में रामावतार होगा तो उनके चरणों की रज से तेरा उद्धार होगा।

राम—बड़ी ही विचित्र कथा है महाराज !

विश्वामित्र—हाँ, परन्तु रघुवीर ! अब कृपा करके इस अभागिन का पाप हरो और चरण-रज देकर इसे भवसागर के पार करो।

गाना **लावनी**

दोहा—सुनो राम ! यह पापिनी अधम अहिल्या नार।
बिन रज हो सकती नहीं भवसागर के पार॥

लावनी—यह दीन बिचारी दुखियारी कर्मों की मारी नारी है।
पापों ने इसको घेरा है, दुखिया पर संकट भारी है॥

अब केवल आस तुम्हारी है तुम ही इसका उद्धार करो।
उपकार की यह अभिलाषा है रघुकुल-भूषण उपकार करो॥
तुम दुख भंजन कहलाते हो इसका भी दुख हरना होगा।
तुम पार उतारन हारे हो इसको भी पार करना होगा॥
संकोच तजो, आगे को बढ़ो चरणों को राम छुवाओ तुम।
इसको तो पल-पल भारी है क्यों व्यर्थ ही देर लगाओ तुम॥

राम—जैसी आज्ञा गुरुदेव !

[राम का चरण छुवाना और शिला का स्त्री रूप हो जाना]

अहिल्या—धन्य, धन्य ! हे नाथ ! आपकी पतित-पावनता को धन्य!

गाना

प्रभो ! तुम धन्य ! और यह धन्य माया।
अपावन को महापावन बनाया॥
पड़ी थी बन के पत्थर शाप के वश।
महा पापों ने था मुझ को दबाया॥
बताऊं किस तरह इस रज को महिमा।
किया पावन चरण ज्यों ही छुवाया॥
महा आनन्द देखा इक नजर में।
तुम्हारे ही चरण में स्वर्ग पाया॥
न जो सम्भव कुशल ससार में।
वह इक ठोकर में ही करके दिखाया॥

[अहिल्या का आकाश को उड़ जाना और विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित आगे चलना परदा गिरना]

दृश्य छठा

(गंगा जी का दृश्य)

[विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित प्रवेश]

राम—हे नाथ ! यह धारा किस नाम से प्रसिद्ध है ?

विश्वामित्र—बेटा ! इसे तरण-तरिणी गंगा कहते हैं। इसकी कथा

बड़ी विचित्र है।

राम—वह किस प्रकार है प्रभो !

विश्वामित्र—हे राम ! तुम्हारे उच्च कुल में सगर नामक एक राजा त्रिलोकि में प्रसिद्ध हुए हैं। उनके दो सुन्दर रानियां थीं। एक का नाम केशिनी और दूसरी का सुमति था। कुछ समय पश्चात राजा दोनों रानिया को लेकर बनों में चले गए और भृगु मुनि के आश्रम के निकट रहकर तपस्या तथा उनकी सेवा करने लगे। अन्त में मुनि ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि केशिनी से एक और सुमति से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी। यह आशीर्वाद पाकर राजा अयोध्या चले आए। शुभ अवसर आने पर केशनी के गर्भ से असमंजस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुमति के गर्भ से एक तूम्बी हुई जिसमें से साठ हजार पुत्र पैदा हुए। राजा सगर निन्नानवे यज्ञ सम्पूर्ण कर चुके थे, जब सौवां यज्ञ करने लगे तो इन्द्र बड़ा भयभीत हुआ और अश्वमेघ यज्ञ का घोडा कपिल मुनि के आश्रम में छिपा दिया। राजा की आज्ञा से उनके साठ हजार पुत्र घोड़ा ढूंढने निकले और खोजते हुए कपिल मुनि के आश्रम में जा पहुंचे। घोड़ा तो मिल गया परन्तु समाधि भंग हो जाने से मुनि को बड़ा क्रोध आया और शाप देकर उन सबका भस्म कर दिया। अन्त में यह सोचकर कि उनका उद्धार केवल गंगा जी के पवित्र जल से ही हो सकता है राजा सगर ने गंगा जी का तप किया और वे इसी अवस्था में देवलोक सिधार गये। इसके पश्चात राजा के पुत्र अंशुमान ने भी तप किया किन्तु वे भी सफल न हो सके। अंशुमान के पुत्र राजा दिलीप और फिर राजा दिलीप के पुत्र राजा भागीरथ हुए। भागीरथ ने अन्न-जल त्याग कर गंगा जी को घोर तपस्या की; अन्त में गंगा जी ने प्रसन्न होकर मृत्यु-लोक में आना तो स्वीकार

कर लिया किन्तु कहा कि मेरी जलधार को शिवजी महाराज के अतिरिक्त और कोई नहीं रोक सकता, इसलिये पहले उनको प्रसन्न करो। तब राजा ने शिवजी को आराधना करके उनको भी प्रसन्न किया और गंगा जी मृत्युलोक में आ गईं। शिवजी महाराज ने एक वर्ष तक गगा जी को अपनी जटा में धारण किये रखा। इसके पश्चात् उसकी एक धारा आकाश को चली गई जिसका नाम मन्दाकिनी हुआ; दूसरी पाताल को गई जो प्रभावती के नाम से प्रसिद्ध हुई और तीसरी को भागीरथ जी ले आए, जिसको गंगा कहते हैं। इसी की पवित्र धारा से सगर के पुत्रों का कल्याण हुआ।

राम—धन्य हो प्रभो !

[गंगा जी के कई पण्डों का उनको अपना यजमान बताकर झगड़ना]

एक पण्डा—आइये महाराज ! पधारिये ! आप मेरे यजमान हैं।

दूसरा—नहीं महाराज ! यह झूठ बोलता है, आप मेरे यजमान हैं।

तीसरा—कदापि नहीं, ये मेरे यजमान हैं।

चौथा—अरे ! क्यों बातें बना रहा है, ये तो आदिकाल से हमारे यजमान हैं।

पहला—जाओ ! अपना रास्ता देखो, दूसरे के यजमानों को ठगना चाहते हो ? यह अच्छी बात नहीं !

दूसरा—तो क्या ये कभी तुम्हारे यजमान हो सकते हैं ?

पहला—क्यों नहीं ! ये सदा से ही हमारे यजमान हैं।

तीसरा—अरे भाई ! इस प्रकार झगड़ने से कोई लाभ नहीं ! जो महाराज की वंशावली सुनायेगा वही दक्षिणा पायेगा।

पहला—ठीक ! बिल्कुल ठीक ! अच्छा अब देखें कौन आगे आता है जो इनकी पूर्ण वंशावली सुनाता है। [सबका चुप हो जाना]

पहला पण्डा—महाराज ! ये सब आप को धोखा दे रहे हैं। आप के प्राचीन पण्डा हम ही हैं। यह लीजिए अपनी वंशावली सुन लीजिए आपके वंश में सबसे पहले राजा अव्यक्त हुए जिनका

पुत्र ब्रह्मा और ब्रह्मा का मारीच तथा मारीच का पुत्र कश्यप हुआ। राजा कश्यप के यहां महाराज सूर्य का जन्म हुआ जिनके नाम पर आप के कुल को सूर्यवंश कहते है। राजा सूर्य के यहां राजा मनु और मनु के यहा राजा व्यस्त का जन्म हुआ। राजा व्यस्त के पुत्र अक्षराकु और राजा अक्षवाकु के राजा काक्षी हुए। राजा कोक्षी के घर में राजा बाड और राजा बांड के घर में राजा अणिरन्य उत्पन्न हुए। फिर राजा अमरस्त और अमरस्त के पुत्र राजा पृथु हुए। पृथु के त्रिशंकर, त्रिशंकर के धरीमार और धरीमार के राजा जानाशु हुए। इसके पश्चात जानाशु के मान्धाता, मान्धाता के सुसिन्धु और सुसिन्धु के दो पुत्र हुए एक ध्रुवसिन्धु तथा दूसरे प्रसिनजित। ध्रुवसिन्धु के राजा अस्त और अस्त के राजा भरत तथा भरत के यहां राजा सगर पैदा हुए, जिन्होंने सो अश्वमेध यज्ञ किये और जिनके साठ हजार पुत्र कपिल मुनि के कोप से जलकर भस्म हो गये। इनके दो पुत्र असमंजस तथा अशुमान हुए। अंशुमान के राजा दिलीप और दिलीप के भागीरथ हुए जो इस तरण-तारिणी गंगा को मृत्युलोक में लाए। इन्हीं भागीरथ के पुत्र का नाम काकस्त और काकस्त के पुत्र का नाम रघु था जिनके नाम पर आप के वंश को रघुवंश भी कहते हैं। राजा रघु के यहां राजा कल्माखपाद, कल्माखपाद के राजा शखन, राजा शंखन के सुदर्शन और सुदर्शन के राजा शोघरक उत्पन्न हुए; फिर राजाशीघरक के राजा मरु, मरु के प्रशश्र और प्रशश्र के अम्रोक तथा अम्रोक के यहां नीकस्य ने जन्म लिया। इन्हीं नीकस्य को सन्तान राजा जजात थे। राजा जजात के राजा नाभाग, राजा नाभाग के राजा अज और राजा अज के पुत्र ही आपके पिता दशरथ हैं।

विश्वामित्र—ठीक है! रघुवंश के पण्डे तुम्हीं हो!

राम—(अपनी अंगूठी उतार कर) यह लो अपनी दक्षिणा!

[सबका गंगा पार होना, परदा गिरना]

पांचवां अंक

दृश्य पहला

(जनकपुर की झांकी)

[विश्वामित्र राम-लक्ष्मण सहित एक आश्रम में ठहरे हैं राजा जनक मिलने आते हैं]

जनक—(प्रणाम करके) ऋषिराज के चरणों में जनक का प्रणाम स्वीकार हो।

विश्वामित्र—चिरंजीव रहो राजन्! कल्याण हो!

जनक—महाराज! आपने बड़ा अनुग्रह किया जो ऐसे शुभ अवसर पर दर्शन दिया। आपके साथ ये दोनों किस बड़ भागी के दुलारे हैं जो आज जनकपुर पधारे हैं?

विश्वामित्र—राजन्! ये अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के सुकुमार हमारे साथ हैं। इनका नाम राम और ये लक्ष्मण इनके छोटे भ्रात हैं।

राम-लक्ष्मण—महाराज जनक को हमारा नमस्कार है।

जनक—चिरंजीव रहो पुत्रों!

खुले हैं भाग्य अब मिथिला नगर-वासी बिचारों के।
ऋषि के साथ ही दर्शन मिले दशरथ कुमारों के॥

विश्वामित्र—राजन्! यह आपकी बड़ाई है, जो आपने इन बालकों के प्रति ऐसा श्रद्धा दिखाई है।

जनक—अच्छा महाराज! किसी प्रकार कष्ट न उठाना, यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो तुरन्त सूचना पहुंचाना।

राम—नहीं महाराज ! हम बड़े सुख में हैं। किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। आप का प्रबन्ध सराहने योग्य है।

लक्ष्मण—निस्सन्देह !

मुनिवर की कृपा से हो गया इस ओर जो आना।
लिखा था भाग्य में दर्शन जनक जो आपका पाना॥

विश्वामित्र—राजन् ! आप हमारी ओर से निश्चिन्त रहें, हमें कोई कष्ट नहीं है।

जनक—अच्छा महाराज ! तो आज्ञा दीजिए, अब दूसरे अतथियों से मिलने भी जाना है।

विश्वामित्र—अच्छा राजन ! आनन्द रहो।

[जनक का जाना]

विश्वामित्र—बेटा ! अब सन्ध्या का समय भी होने वाला है, इसलिए तुम दोनों जाओ और पूजा के लिए जनक-वाटिका से कुछ पुष्प ले आओ !

राम लक्ष्मण—जैसी आज्ञा गुरुदेव !

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(पुष्प-वाटिका)

[राम-लक्ष्मण का आना और वाटिका की शोभा को देखकर प्रसन्न होना]

अहा !

जिधर देखो उधर ही टहनियों पर फूल आये हैं।
खिली पड़ती है कलियां डालियों ने सिर झुकाये हैं॥

(फूल तोड़ना)

वाह वाह ! वाटिका क्या है सुरलोक की फुलवारी है, जिधर

देखो उधर की छटा ही न्यारी है :—

सरोवर, ताल, निमल हैं किलोल हस करत ह।
मधुर वाणी से पक्षी बोल-रस कानों में भरते हैं॥

लक्ष्मण—क्यों न हो !

स्वर्ग से बढ़कर न क्यों भूमि पे फिर वह धाम हो।
धन्य है वह बाग जिसमें राम को आराम हो॥

राम—देखो लक्ष्मण ! पौधे किस प्रकार मस्त होकर झूम रहे हैं और भौंर गुंजार-गुजार कर फूलों का मुँह चूम रहे हैं :—

शोभा लटक रही कहीं फूलों की डार में।
सुन्दर कमल खिले हैं कहीं जल की धार में॥

गाना

देखो लक्ष्मण ! कैसा उपवन, पत्ते पत्ते पर यौवन है।
कलियां चटकीं,सुमन खिले अरु शाखाओं का नव-जीवन है॥
नित-शीतल मंद सुगंध पवन,करता हुआ चलता पुलकित तन।
आशाओं का सुन्दर पुष्पित वन, अद्भुत आनन्द-निकेतन है॥
पक्षी मृदु तान सुनाते हैं, कैसे पुलकित हो गाते हैं।
जन-जन का मन हर्षाते हैं, सुखधाम मनोहर मधुवन है॥
सर, ताल, सरोवर निर्मल जल, जिनमें फूले हैं कुशल कमल।
सुन्दर कलियां पत्ते कोमल, सचमुच सुरपुर का दर्शन है॥

लक्ष्मण—निस्सन्देह भ्राता जी ! बनाने वाले ने वाटिका में कोई कमी नहीं छोड़ी है; इसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है :—

फल फूल डाल डाल की शोभा बढ़ा रहे।
हैं वृक्ष कल्पवृक्ष को लज्जित बना रहे॥

राम—और जरा इधर तो देखो !

जुही, चम्पा, चमेली, क्या नई शोभा दिखाती हैं।

गले में डाल कर बाहें नहीं फली समाती हैं ।।

लक्ष्मण—परन्तु भ्राता जी ! सुनिये तो सही ! कंसे मधुर संगीत की ध्वनि आ रही है, मानो इन्द्र के दरबार में उर्वशी गा रही है।

राम—प्रतीत होता है कि देवी पूजन के लिये कुछ स्त्रियां आ रही हैं। आओ एक ओर हो जायें और पहले उन्हें निकल जाने दें।

[दोनों का एक ओर खड़े हो जाना और सीता जी का सखियों सहित आना।]

गाना

चलो मन्दिर में माता के विनय अपनी सुनाने को।
श्रद्धा और प्रेम से चरणों में उनके सिर झुकाने को ।।
सकल संसार के क्षण में जो संकट नाश करती है।
उसी के सामने जाती हैं अब इच्छा जताने को ।।
श्रद्धा से भेंट है उसकी सदा जीवन सदा तन मन;
हृदय के भाव रूपी पुष्प हैं उस पर चढ़ाने को ।।
सुनाएंगे उसे दुख—दर्द अपना और मरम अपना;
करेंगे प्रार्थना उससे 'कुशल' संकट मिटाने को ।।

सखी (१)—सखी ! आज तो ऋतुराज ने अनोखी ही शोभा दिखाई है, वह देखो ! फूलों पर कैसी बहार आई है :—

किया है मोतियों से ओस के शृंगार फूलों ने।
लता के डाल के अपने गले में हार फूलों ने ।।

सखी (२)—हां ! ठीक ही कहती हो ।:—

पसीना आ गया लाले पै बेले की निगाहों से।
नजरशरमा गई नरगिस की चम्पा की अदाओं से ।।

सीताजी—अरी सखियो ! इनके रंग रूप का ही बखान करती हो या इनकी सुगन्धि को ओर भी ध्यान करती हो ?

जिन्हें है रूप प्यारा चाह बे सूरत की करते हैं।

जो गुण को चाहते हैं वे कहां रंगत पै मरते हैं ।।

सखी (३)—हां सखी ! आज की शोभा को देखकर तो मन यही चाहता है कि कोई सुन्दर राग गाए और झूला झूल कर मन बहलायें ।

सखी (१)—हाँ सखी ! तूने मेरे मन की बात छीन ली है ।

सीता—अच्छा तो आओ और कोई सुन्दर मल्हार गाओ ।

गाना

टेक—आओ आओ प्यारी, गावें सारी, बगिया की छवि न्यारी ।
देखो क्यारी-क्यारी, कैसी प्यारी, कुदरत के बलिहारी ।।
क्या फले फूल रंगीले, महकी है क्यारी—क्यारी ।
आओ–आओ प्यारी·····

सखी (१)—क्या दिखाई इस जगह परमात्मा ने शान है ।
मन के बहलाने को यह कैसा परम स्थान है ।।

सखी (२)—डाल पर क्या रंग है और फूल पर कैसा निखार ।
हो गई यह वाटिका सुर-वाटिका, सुन्दर अपार ।।

सखी (३)—डालियों में लग रहे मेवे रसीले रस भरे ।
चान्दनी चम्पा कहीं गेंदें कहीं हैं मोगरे ।।

सीताजी—फूल में सौ रंग हों लेकिन अगर खुश्बू न हो ।
कौन ढूंढे फूल को जब मन हरण जादू न हो ।।

सब—क्या फूले फूलें रंगीले महकी है क्यारी-क्यारी ।
आओ आओ·····

[पीछे से एक सखी का आना]

सखी—कहो सखी ! क्या बात है ? इतनी प्रसन्न कैसे हो रही हो ?

नई सखी—क्या बताऊं बहिन !
यहां की सैर करने आज दो सुकुमार आये हैं ।
अनोखा रूप है, सुन्दर हैं, कोमल हैं, सुहाये हैं ।।

सखी (२)—अरी ! कहीं ये वही राजकुमार तो नहीं जो मुनि विश्वामित्र के साथ आए हैं और नगर के सकल नर नार को भाए है। :—

सुना है रूप उन दोनों का है बस योग्य दर्शन के।
लखे जो मोहिनी मूरत बड़े ही भाग्य उस जन के॥

वही सखी—हाँ-हां, सचमुच यही बात है। चलो मैं तुम्हें, अभी दिखा देती हूं।

[सबका उसके साथ जाना]

वही सखी—वह देखो ! रसाल के वृक्ष के नीचे, चम्पा के कुंज के पास !

सीताजी—(राम को देखकर) अहा विधाता ! कैसा अलौकिक रूप है ! कैसी मनोहर मूर्ति है। एक बार नारद जी ने मुझे वचन दिया था कि तुझे प्रथम बार इसी पुष्प-वाटिका में अपने पति के दर्शन होंगे क्या वह वचन आज ही सत्य हो रहा है। :—

उदय क्या आज ही होगा मेरे सौभाग्य का तारा।
मिला है आज क्या इस वाटिका में प्राण आधारा॥

लक्ष्मण—(सीता जी को देखकर) देखिये भ्राता जी ! यह फुलवारी में कौन सुकुमारी है ?

राम—भाई, ऐसा प्रतीत होता है कि यह ही जनक-दुलारी है, जिसके लिये कल स्वयंवर की तैयारी है :—

इसी के रूप ने जादू सा सब वृक्षों पे डाला है।
इसी के तेज का इस बाग के अन्दर उजाला है॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ! आज पहली बार आप के मुख से सुन्दर रूप का वर्णन हो रहा है, इसका क्या कारण है प्रभो ?

राम—क्या बताऊं भाई ! यह आश्चर्य की बात ही नहीं, लज्जा का भी स्थान है कि मेरा मन इस प्रकार चलायमान है। :—

बे ठिकाने यह नजर आजन्म जा सकती नहीं।
ध्यान में मेरे पराई नार आ सकती नहीं॥
क्या कहूं लीला विधाता की कही जाती नहीं।
चोट वह दिल पर पड़ी है जो सही जाती नहीं॥

लक्ष्मण—ऐसा क्यों हो रहा है प्रभो !

राम—नहीं कह सकता कि यह इस रूप का आकर्षण है या मेरी आंखों का दोष है? क्योंकि मैं जितना दमन करता हूं, उतना ही मन इसकी ओर खिचा जाता है; दिल को जितना समझता हूं, उतना ही अधिकार से बाहर हुआ जाता है।

गाना

सुनाऊं किस तरह क्या-क्या मेरे दिल पर गुजरती है।
वह ज्योति चन्द्रमुख की हाय इन आंखों में फिरती है॥
भरमता है उसी की ओर दिल भौंरा मेरा बन कर।
उसी के प्रेम-रस का आत्मा बस पान करती है॥
निहारे हर घड़ी इस रूप को इच्छा है आंखों की।
यह प्यासी दृष्टि दर्शन से नहीं पल भर को भरती है॥
कटीले नैन से इसके कुशल बेचैन दिल मेरा।
वह सूरत मोहनी सी आह मन का घोर हरती है॥

प्रेम ! तू कितना प्रबल है ! तेरी बेड़ियों में कितना बल है ?

बन्ध गया है मन जो मेरा प्रेम रूपी जाल से।
किसी तरह छूटेगा हे भगवान इस जंजाल से॥

सखी (१)—राजकुमारी ! तुम बड़ी देर से इसी ओर क्या देख रही हो ? कहीं आज मन की चोरी तो नहीं हो गई ?

सखी (२)—बताओ बहिन ! अपने मन की दशा कुछ तो बताओ ?

सीताजी—क्या बताऊं ?

गाना

रूप अनूपम श्याम वरण का इक शोभा दिखलाता है री।
कुंडल कानन, माल कंठ और मुकुट शीश मन भाता है री॥
लम्बी बाहें, नेत्र विशाला, वाणी मधुर चाल मतवाली।
अलकें काली, टेढ़ी चितवन टीका चित्त चराता है री॥
एक हाथ फूलों की डाली, एक हाथ है वाण री आली।
दुष्ट दलन जो धनुष है प्यारा कांध शोभा पाता है री॥
क्या वरणूं कुछ ज्ञान नहीं है रूप की महिमा चन्द्र-वदन के।
मुख की शोभा देख कुशल वह कामदेव शर्माता है री॥

सखी (१)—निस्सन्देह ये राजकुमार शोभा की खान हैं, और भोले भाले मन को चुराने में बड़े ही सुजान हैं।

सखी (२)—हा,हां, ! वह देखो ! भौंरा इनके मुख को कमल समझ कर उसी ओर मण्डला रहा है।

सखी (३)—और तोता होटों को बिम्बा फल जानकर चारों ओर चक्कर लगा रहा है।

सीताजी—प्राण विधाता ! आज तुझे क्या स्वीकार है ? मेरा मन इनसे प्रेम करने के लिये क्यों बेकरार है !

गाना

बसी है मन में यह प्यारी सूरत यह रूप दिल में समा रहा है।
यही है धन और यही लगन है खयाल इनका ही आ रहा है॥
विधाता करदे यह आस पूरी रहूं मैं चरणों में इनके हर दम।
यही है आशा यही है इच्छा यह ध्यान मन में समा रहा है॥
धनुष है शिवका कठोर निश्चल, भुजाएं इनकी बड़ी ही कोमल।
यही है संकोच अब हृदय में मन को व्याकुल बना रहा है॥
विधाता अनुकूल हम पे रहना, पड़े न संकट विरह का सहना।
यह चन्द्रमुख है चकोर मन है 'कुशल' जो प्रीति लगा रहा है॥

सखी—सखी ! समय बहुत हो गया। अब मन की उछलन को छोड़ो और पार्वती जी का पूजन करो।

सीता जी—आहो ! मैं तो अपने विचारों में ही खो गई थी ! चलो अब शीघ्र चलकर माता पार्वती के दर्शन पायें और उन्हें अपना मर्म सुनायें।

[सब का जाना]

लक्ष्मण—भ्राता जी ! अब चलिये ! गुरुदेव की सन्ध्या का समय होता जा रहा है।

राम—(ठण्डी सांस भरकर) हां भाई चलो।:—

पांव को चलना पड़गा मन यहां रह जायगा।
चोट खायेगा परन्तु कुछ नहीं कह पायेगा॥

[राम लक्ष्मण का जाना, दृश्य-परिवर्तन पर पार्वती-मन्दिर का दर्शन]

सीता जी—(पार्वती जी के सन्मुख) सुनो ! हे माता पार्वती ! आज सीता की पुकार सुनो ! दयालु हृदय के पट खोलकर सूनो !

गाना

आसरा तेरे सिवा भाता नहीं संसार में।
आस लेकर आई है दासी तेरे दरबार में॥
या तो दे शक्ति बड़ा बस उस मेरे चितचोर की।
या कमी करदे दया करके धनुष के भार में॥
है पसारा सामने पल्ला तेरे भिक्षा मिले।
कुछ कमी आती नहीं माता तेरे भण्डार में॥
जानती हर मन की तूहै कामना सारी कुशल।
क्या कहूं फिर अपनी इच्छा आपसे हर बार में॥

हे गिरिराज किशोरी ! यदि मैंने अपने जीवन में कोई पुण्य कर्म किया है तो उसका केवल यही फल दीजिये कि राम को धनुष तोड़ने की शक्ति प्रदान कीजिये।

पार्वती—सीता ! निराश न हो, तेरी मनोकामना अवश्य पूरी होगी।

सीता जी—धन्य है, माता ! धन्य है !

[सखियों सहित सीता का जाना परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(सीता-स्वयंवर)

[दरबार सजा है. सारे राजे महाराजे अपने-अपने आसन पर बैठे है, मन्च पर विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित विराजमान हैं, सिहासन पर राजा जनक और उसके पास एक सुन्दर मन्च पर सीता जी सखियों सहित बैठी हैं सब के बीच मे धनुष रखा है।]

जनक—राव जी ! हमारी प्रतिज्ञा सबको सुना दी जाय।

भाट—जैसी आज्ञा महाराज ! (ऊंचे स्वर में)

अब कान लगा बलवान सुनो है राजा जनक का एक परण।
नहीं होगा कदापि मिथ्या कथन है शूरवीर का सत्य वचन ॥
है बीच सभा शिव-धनुष पड़ा, जो वीर करे इसका भंजन।
सम्मान बढ़े और सिया मिले, राजा के हो प्रण का पालन ॥
हे राजसभा में पधारे हुए शूरवीरो ! अब महाराज जनक की प्रतिज्ञा सुनो ! आप लोगों के सामने जो 'शम्भु चाप' पड़ा है वह उठाने में भारी और पराक्रम में बहुत बड़ा है। जो वीर इस धनुष को उठायेगा, वही सीता का पति कहलायेगा। इसलिये अब आओ और अपना-अपना परक्रम दिखाओ !

राजा (१)—लगाया जोर जब मैंने मिटा दूंगा सभी खटका।
धनुष ढूढा न पाएगा दिया जब हाथ का झटका ॥

[थककर बैठ जाना]

राजा (२)—यह धनुष बोदा है इसका तोड़ना क्या बात है।
तोड़ डाले सैकड़ों इसकी तो क्या औकात है ॥

(जोर लगाकर) अरे ! यह धनुष नहीं धोखा है ।

राजा (३)—लगाया हाथ मैंने और मिटी कठिनाइयां इसकी ।
यदि कहदो तो इकदम में उड़ा दूं धज्जियां इसकी ।।

(धनुष को छू कर) ओहो ! यह धनुष तो वास्तव में बहुत भारी है ।

राजा (४)—बस बैठ जाओ कर लिया मैदान सर बहुत ।
शक्ति नहीं शरीर में और शोरो शर बहुत ।।
अब हाथ पड़ गया है जो मुझसे जवान का ।
देखो कि दम में चढ़ता है चिल्लाकमान का ।।

रावण—(आकर) वाह ! वाह !
शंकर का चाप और ये दो दिन के छोकरे ।
शक्ति कहां यह कीड़ी की पत्थर में खो करे ।।
लोकों में आज फैला हुआ जिसका नाम है ।
इसको उठा के तोड़ना रावण का काम है ।।

(सोच कर) परन्तु नहीं, यह चाप मेरे पूज्य देव शिवजी महाराज का चाप है, इसका तोड़ना तो अलग निरादर से छूना भी महापाप है । (फिर सोच कर) ओहो,जनक ने कैसा विचित्र जाल फैलाया है कि शिव का धनुष तोड़ना हो सीता के विवाह का प्रतिबन्ध बनाया है । ओह कैसा नीच ख्याल है ? कितनी गहरी चाल है कि रावण अपने गुरु का चाप कदापि नहीं तोड़ सकता, इसलिए सीता के साथ विवाह का सम्बन्ध भी नहीं जोड़ सकता । ठीक है, कपटी की कपट-चाल सफल हो गई और रावण की सारी योजना निष्फल हो गई । इस लिए अब चलें, अपने दूसरे कामों में काहे को विलम्ब करूं ?:—

वक्त आयेगा तो यह भी देखा भाला जायेगा ।
इस कपट का भी कभी बदला चुकाया जायेगा ।।

(जाना)

भाट—महाराज बाणासुर जी ! अब आप भी अपनी शक्ति आजमाइये और धनुष को उठाकर ससार में यश पाइये ।

बाणासुर—नहीं-नहीं ! यह मेरे गुरु का चाप है, इसलिये इसको तोड़ना महापाप है । :—

न डालूंगा मैं इस पर भूलकर दृष्टि निरादर को ।
मेरे तो वास्ते वस्तु है यह सत्कार आदर की ॥

जनक—(क्रोध से) लज्जा करो, लज्जा करो, हे छाती उभार कर चलने वाले कायरो ! लज्जा करो ! हे वीरता के नाम को कलकित करने वाले डरपोको ! लज्जा करो ! आज भली प्रकार प्रकट हो गया कि वीरता ससार से विदा हो गई, क्षत्रीपन की लाज हवा हो गई । आजकल के राजकुमारों से किसी बात की आशा रखना भूल है, इन रंगे हुए गीदड़ों को सिह समझना बुद्धि के प्रतिकूल है (शोक में पड़ कर) आह ! यदि मैं पहले से जानता तो स्वयंवर का प्रण कदापि न ठानता । जिस धनुष को कुमारी सीता बड़ी सुविधा से उठा लेती थी, इन वीरों को उसका हिलाना भी भारी है; इसलिए पुत्री को कुंवारी बिठाने में लाचारी है । जाओ! हे अभिमानियो ! अब अपने-अपने घर जाओ यदि कुछ लाज है तो अपनी स्त्रियों के आसूओं में डूब जाओ !

प्रकट अब हो गई है वीरता इस वीर मण्डल की ।
न जिसमें नाम को जल है गरज है ऐसे बादल की ॥
किया था जो कभी मैंने वचन अब हो चुका पूरा ।
चलो बस अपने घर जाओ परण अब हो चुका पूरा ॥

लक्ष्मण — गाना — (लावनी)

दोहा—राजन होकर इस कदर ज्ञानवान बलवान ।
एक जरा सी बात पर वीरों का अपमान ॥

लावनी—क्यों बिना विचारे कहते हो ये वचन तुम्हारे तीखे हैं ।

करते हैं घायल हृदय को बरछी हैं वाण सरीखे हैं ।।
एक एक छेद है छाती में एक एक तुम्हारी वाणी पर ।
सब को अपमानित कर डाला केवल इनको नादानी पर ।।
जो वीर पुत्र क्षत्रिय हैं अपमान नहीं सह सकते हैं ।
अपमानित हो कुलमान तो फिर खामोश कहां रह सकते हैं।।
बुलवा कर राज सभा में जो क्षत्री कुल का अपमान किया ।
अपने मेहमानों का तुमने यह क्या अच्छा सम्मान किया ।।

हे राजा ! इतनी ढिटाई ! वीरों का अपमान करते हुए लज्जा न आई ! न कुछ सोचा न विचारा, जो मुंह में आया सोई कह डाला । श्री रामचन्द्रजी के उपस्थित होते हुए वीरों का जो अपमान किया है समझ लो कि नाश का सामान किया है । जहां रघुवंश के दो दो धनुषधारी विराजमान हैं, वहां ऐसे कड़वे वचन कहना विष के समान है । यदि भ्राताजी की आज्ञा होती, तो अभी इस अपमान का बदला चुका देता, रंगभूमि को रणभूमि बना देता । तुम नहीं जानते कि जब तक सूर्यवंश का सूर्य चमकता है, वीरों को अपमानित कौन कर सकता है । :—

धनुष, बोदा धनुष, कुछ भी नहीं है वीर के आगे ।
उड़ा दूं पर्वतों तक को जो आयें तीर के आगे ।।

विश्वामित्र—शान्त ! बेटा लक्ष्मण शान्त ! क्रोध को थूक डालो, राजा के सन्मुख ऐसे कटु वचन न निकालो ! जनक जो ने जो कुछ भी कहा है कायरों के लिये कहा है । देखो उनकी कामनाओं का फूल मुरझा गया है, उनकी आशाओं पर पानी फिरा जा रहा है, फिर क्रोध आना स्वाभाविक ही है ।

लक्ष्मण—(राम से) सुनो ! हे रघुकुलमणि, मेरी एक प्रार्थना सुनो ।

गाना

दोहा—हाथ जोड़ बिनती करूं, चरण नवाऊं शीश ।

राजा ने अनुचित वचन, आज कहे जगदीश ।।

लावनी—जिस सभा में आप पधारें हों और खड़ा हो सेवक आज्ञा में ।
फिर कौन भला कह सकता है ये वचन कटोले दुनियां में ।।
हे नाथ हूं सेवक चरणों का कहने को यों सकुचाता हूं ।
पर वचन हैं बिल्कुल सत्य मेरे मैं कसम आपकी खाता हूं ।।
ब्रह्मांड उठालूं ऐसे मैं सम्भव यह मुझ को पाता है ।
जिस तरह खेलने को बालक साधारण गेंद उठाता है ।।
रक्खा है फिर क्या हे स्वामी ! इस बोदे धनुष विचारे में ।
मूली को तरह तोड़ डालूं पर्वत को एक इशारे में ।।

दोहा—पत्ती है इक फूल की, तिनके से कमजोर ।
ये राजा करने लगे, फिर क्यों इतना शोर ।।

भ्राता जी ! राजा जनक ने बड़ी अनुचित बात कही है जो मुझ से नहीं सही गई है । मैं अभिमान त्याग कर और आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि यदि आपकी आज्ञा पाऊं तो इस धनुष को कमल की डंडी के समान उठाऊं । बाहू के झटके से बड़े-बड़े विशाल पर्वतों का हिला दूं, आकाश और रसातल का पल्ला मिलादूं ।

तोड़ डालूं इस तरह जिससे जगत भयभीत है ।
वीर मण्डल कह उठे लक्ष्मण ! तुम्हारी जीत है ।।

राम—(प्यार से) ठीक है भाई ! मैं तुम्हारे पराक्रम को भली प्रकार जानता हूं, परन्तु इस समय क्रोधित न होना चाहिये । आवेश में आकर अपनी गम्भीरता को नहीं खोना चाहिये । राजा जनक हमारे बड़े हैं और इस समय तो बेचारे महान निराशा में खड़े हैं । साचा, समझो और ध्यान से मेरी बातें सुनो !

गाना

अच्छा नहीं है लक्ष्मण ! झगड़ा तुम्हें बढ़ाना ।
भाता नहीं किसी का हमको मरम दुखाना ।।

सीखा है आज तक जो हमने बनों में रह कर।
अनुचित है इक घड़ी में सारा ही भूल जाना ॥
राजा जनक बड़े हैं आदर उचित है इनका।
कर्त्तव्य जो हमारा वह चाहिये निभाना ॥
जिन से न चाप उट्ठा कायर उन्हें कहा है।
फिर कब उचित है ऐसी बातों पे मुंह चढ़ाना ॥
त्यागो यह क्रोध भाई! खामोश हो के बैठो।
आज्ञा है जो गुरु की उसको कुशल निभाना ॥

लक्ष्मण—(सिर झुका कर) जैसी आज्ञा महाराज। (बैठ जाना)

विश्वामित्र—देखो! हे राम! सभा के शान्त वायु मण्डल को देखो निराशा में बदलती हुई जनक की आशा को देखो! बेटा! अब तुम भी अपना पराक्रम दिखाओ और इन लोगों का सन्ताप मिटाओ!

गाना

हे राम उठो, मत देर करो तुम को शिव चाप उठाना है।
अब बात बिगड़ती जाती है तुम को यह बात बनाना है ॥
बलहीन हुए बलवान सभी, बैठे हैं निराशावान सभी;
पूरे करके अरमान सभी, जन-जन का शोक मिटाना है ॥
तुम सूर्यवंश के तारे हो, दशरथ के राजदुलारे हो।
भूमण्डल में रघुकुल-दीपक, तुम को ही तो चमकाना है ॥
इक दिल की आशा टूटी है, इक सांस को उलझन उलझी है।
इस उलझन को इस मुश्किल को तुमको हो तो सुलझाना है॥
देखो हिलने पाये न मही, आकाश न डोले जरा कहीं,
यह अन्त समय का समय नहीं, इस तौर से चाप झुकाना है।

राम—जो आज्ञा प्रभो!

दोहा—आज्ञा पाकर आपकी जाता हूं महाराज।
आशीर्वाद से आप के पूर्ण हों सारे काज ॥

लाज आज रखना मेरी शरणागत प्रतिपाल ।
तेरा ही बल है मुझे हे प्रभो दीन दयाल ।।

(धनुष उठा कर) लीजिये ! यह वही धनुष है जिससे प्रत्येक वीर भय खाता है, लो देखो अब इसका चिल्ला कान तक आता है ।

उठाने के लिये जिसके विवश हर शूर होता है ।
उसी का देखिये अब किस तरह से चूर होता है ।।

[पटाखे की आवाज पर धनुष तोड़ देना]

सब—जय ! जय ! दशरथ कुमार की जय !

[सीता का जयमाला पहनाना]

विश्वामित्र—धन्य हो बेटा ! तुमने रघुकुल का नाम उज्जवल कर दिखाया । जो देखते ही देखते धनुष को कई टुकड़े बनाया ।

राम—महाराज ! यह सब आपका ही आशीर्वाद है .

जनक—धन्य है ! वह पिता धन्य है जिसने ऐसा पुत्र रत्न पाया ! वह वीर माता धन्य है जिसने अपनी कोख स ऐसा कमवीर जाया । विधाता ! तुम धन्य हो ! तुमने मेरी शकाओं को मिटा दिया, डूबता नैया को किनारे लगा दिया ।

[परशुराम का प्रवेश]

परशुराम—(क्रोध में) हैं ! क्या करण हुआ ?

कांप उठे दिग्पाल इक दम, पड़ गए पृथ्वी में बल ।
रुक गये हिलते समन्दर हो गये चन्चल अचल ।।
वृक्ष डोले, गूंज उठा जगल, उधर कांपी मही ।
शोर वह फैला पहाड़ों तक को मेखें हिल गईं ।।
आ गया मुख पर पसीना और आतुर मन हुआ ।
क्या अकारण आज शम्भू-चाप का भन्जन हुआ ।।

जनक—(हाथ जोड़ कर)

दोहा—दर्शन देकर आप ने किया बड़ा उपकार।
शीश नवाऊं चरण में करूं विनय हर बार॥
दया-दृष्टि से हो गये पूर्ण हमारे काम।
स्वामी को सीता करो हाथ जोड़ प्रणाम॥

सीता जी—ऋषिराज प्रणाम ! (सिर झुकाना)

परशुराम—दोहा—दूर रहे तुझसे सदा, द्वेष-भाव और राग।
शोक न व्यापे जगत में, होवे अटल सुहाग॥

विश्वामित्र—(गले मिलकर):—
राम लखन आगे बढ़ो, इन्हें नवाओ शीश।
सुखदाता, संकटहरण ऋषियों का आशीश॥

राम-लक्ष्मण—महात्मन् ! प्रणाम।

परशुराम—राम, लखन दोनों जियो ! सदा प्राप्त जय होय।
नाम रहे उज्ज्वल सदा, जग में निर्भय होय॥

जनक—आइये महाराज ! आसन ग्रहण कीजिए।

परशुराम—कहो जनक ! आज नगर के गली, कूचे, महल, अटारी क्यों सवारे हैं ? देश-देश के राजा मिथिलापुरी में किस लिए पधारे हैं ?

जनक—महाराज ! सेवक ने सीता का स्वयवर रचाया था, इसलिये इन सब को न्यौता भेजकर बुलाया था। अब आपकी कृपा···

परशुराम—(बात काटकर) यह तो ठीक है। परन्तु यह चाप किसने तोड़ा है ? शकर की पवित्र कमान पर किस दुष्ट ने हाथ छोड़ा है ? ओह ! इतना साहस, इतनी निडरता ?

यह ढिटाई ! इस कदर अन्याय ! ऐसा पाप क्यों।
सामने मेरे पड़ा खण्डित यह 'शम्भू-चाप' क्यों॥
सच बता दे कौन है शत्रु मेरा दरबार में।
अन्यथा यह राज्य अब छोड़ूं नहीं ससार में॥

राम—महाराज ! इतना क्रोध न कीजिए। शम्भू-चाप तोड़ने वाला आपका कोई सेवक ही होगा।

परशुराम—सेवक ? कौन सेवक ? किसका सेवक ? शम्भू-चाप तोड़ने वाला और मेरा सेवक ?

मान का बैरी है वह पुतला है वह अभिमान का।
जिसने तोड़ा है धनुष शत्रु है मेरी जान का॥

लक्ष्मण—ओहो मुनिराज ! रहने दीजिए ! आप इतने क्यों तलमला रहे हैं ? आखिर यह क्रोध किसे दिखा रहे हैं ?

हजारों तोड़ डाली धुनकियां ऐसी लड़कपन में।
कभी देखा नहीं था क्रोध ऐसा आपके मन में॥

परशुराम—अरे मूढ़ बालक ? तुझे इतना अभिमान ! शंकर की पवित्र कमान का इतना अपमान। क्या तू मेरे क्रोध को नहीं जानता है ? जो छोटे मुख से बडी बातें बखानता है। देख मैं बाल-ब्रह्मचारी हूं बड़ा तेजवान और बलकारी हूं। मेरा परशा दुष्टों के होम की वेदी है, मैंने कई बार पृथ्वी क्षत्रीहीन करके ब्राह्मणों को दान दे दी है।

महा यमराज का फन्दा मेरे परशे की धारा है।
इसी परशे से मैंने सहस्रबाहु को पछाड़ा है॥

लक्ष्मण—ओहो ! तब तो आप बड़े ही बलवान हैं और अपने मुख से अपनी बड़ाई करने में भी परम सुजान हैं। परन्तु महाराज ! हम भी तो मोम को डली नहीं जो अग्नि देखते ही पिघल जाएंगे, ओस की बूंद भी नहीं,जो धूप पड़ते ही ढल जाएंगे—

कुल्हाड़े ऐसे-ऐसे तो हजारों बार देखे हैं।
छुरी के घाव देखे हैं तबर के वार देखे हैं॥
बड़े योद्धा, बड़े बलवान और बलकार देखे हैं।
जो मरने से नहीं डरते वही सरदार देखे हैं॥

भला इन धमकियों का आपकी हम पर असर होगा।
डरेगा वह ही परशे से जिसे मरने का डर होगा ॥

परशुराम—अरे मूर्ख ! मैं तुझे बालक जानकर ही बचा जाता हूं, तेरी छोटी अवस्था पर तरस खाता हूं; नहीं तो (दांत पीसकर) नहीं तो :—

तेरे निर्लज्ज शब्दों पर हूं मैं जी में जला बैठा।
नहीं जीता बचेगा तू जो मैं परशा चला बैठा ॥

लक्ष्मण—क्यों नहीं ! आप निस्सन्देह ऐसे ही हैं ? परन्तु महाराज ! मैंने भी आपको ब्राह्मण जान कर अब तक कुछ नहीं कहा है, नहीं तो मुझे भी कई बार क्रोध आ चुका है। हमारे शास्त्र में गो-ब्राह्मण का मारना महापाप है, इसलिए मुझे पश्चाताप है।

कायरों के मारने में वीर की कब शान है।
दुख न देगा दीन को क्षत्री की जो संतान है ॥

परशुराम—(भड़क कर) ओह इतना निडर ! इतना अन्यायी ! ऐसे कटुवचन कहते हुए तनिक भी लज्जा न आई। अच्छा मूर्ख ! अब सम्भल ! ले, सीधा यम के द्वार चल। (परसा उठाकर) देखो समाज के बैठने वालो। अब मुझे दोष न देना, मैंने अब तक बड़ी शान्ति से काम लिया है, बार-बार अपने क्रोध को थाम लिया है। परन्तु यह निडर बालक बड़ा ही निर्भाग है, सांप का बच्चा जहर में बुझा हुआ जहरी नाग है :—

जितना मैं सीधा चला उतना यह टेढ़ा हो गया।
जिस कदर नर्मी बढ़ी दूना बखेड़ा हो गया ॥
अब नहीं छोड़ूंगा मैं जीता इसे संसार में।
क्रोध की इक धार आई और इसकी धार में ॥

[परशा दिखाना]

लक्ष्मण—तो महाराज ! बार-बार किसे सुनाते हो ? जो कुछ करना-धरना है शीघ्र ही क्यों नहीं कर दिखाते हो ?

क्या किसी की सम्मति लेनी है ऐसे काम में।
कर दिखाओ बस, नहीं बट्टा लगेगा नाम में ॥

परशुराम—कठोर बालक ! फिर वैसे ही कटु वचन बोलकर जले हुये को और जलाता है; अरे मूर्ख ! आप ही अपना काल क्यों बुलाता है :—

क्या तुझे संसार में जीवन दुखारी हो गया।
मूर्ख बच्चा है अभी क्यों जीना भारी हो गया ॥

विश्वामित्र—(स्वयं) अहा !

अभी तक है अन्धेरे में मुनि के ज्ञान का परदा।
पड़ा है इनको बुद्धि पर निपट अज्ञान का परदा ॥
भुलाकर मार्ग सीधा क्या विकट रस्ते पै चलते हैं।
जो हैं ब्रह्मांड के स्वामी उन्हें बालक समझते हैं ॥

(परशुराम से) शांत ! ऋषिराज शान्त ! बालक पर क्रोध करना साधु का धर्म नहीं; इस प्रकार लड़ना झगड़ना ब्राह्मण का कर्म नहीं।

परशुराम—विश्वामित्र जी ! यह बालक हटधर्मी और गंवार है। इसके साथ नर्मी करना ऐसा ही है जैसा विषैले सर्प के बच्चे के साथ दया का व्यवहार करना। किन्तु फिर भी मैं आपके कहने से इसको क्षमा किये देता हूं।

लक्ष्मण—क्यों महाराज ! क्या इतना जल्दी क्रोध शान्त हो गया ? ओहो कैसे भोले मुनि हैं ! (अंगूठा दिखाना)

परशुराम—नहीं रक्खेगा ! कैंची की तरह चलने वाली जबान को बन्द नहीं रक्खेगा, अरे मूर्ख ! क्या अंगूठा दिखाकर मेरे हाथ से मृत्यु का मजा चक्खेगा ?

लक्ष्मण—क्या बरसने वाले बादल भी गरजते हैं ? पात्र जो ओछे होते हैं, वही छलकते हैं :—

बस स्वामी जी आप की देखी सब करतूत ।
करना-धरना कुछ नहीं लड़ने को मजबूत ।।

परशुराम—फिर बोला, फिर अमृत में विष घोला । अरे मूर्ख ! मेरे क्रोध की अग्नि को और न भड़का ! यदि अपनी रक्षा चाहता है तो मेरे सामने से दूर होजा ! नहीं तो :—

तू यदि काल महा-काल भयकर होगा ।
वज्र और लोह से कठिनाई में बढ़कर होगा ।।
रूप तूफान का उमड़ा हुआ सागर होगा ।
क्रोध की आग से फूका हुआ विषधर होगा ।।
मल के भुंगे की तरह तुझको मिटादूं तो सही।
काल को काल के पजे में फसादूं तो सही ।।

राम—महात्मन ! शान्ति कीजिए; बच्चों की बातों पर ध्यान न दीजिए ।

हम तो बालक हैं न गुस्से से डराओ स्वामी ।
भूल जायें तो हमें राह दिखाओ स्वामी ।।

परशुराम—राम ! तेरा भाई बड़ा कठोर और कराला है, शरीर से गोरा किन्तु अन्दर में काला है, मानो सोने के पात्र में विष भरा हुआ है ।

लक्ष्मण—महाराज ! ऐसा मैंने आप को क्या कह दिया ? आप तो व्यर्थ ही क्रोधित होने लगे, यदि वह बोदा और पुराना धनुष टूट गया तो रोने लगे, अच्छा यदि आप को इसके टूटने का महान दुख है तो एक काम कीजिये किसी अच्छे कलाकार को बुलवा कर जुड़वा लीजिये । (अंगूठा दिखाना)

परशुराम—देख ! हे राम ! देख ! तेरा भाई अब भी मझे जला

रहा है, दूर से ही खड़ा २ अगूठा दिखा रहा है। बस अब नहीं रहा जाता, इतना अपमान नहीं सहा जाता (परशा उठाकर) ले अज्ञान बालक ! अब सावधान हो और मरने के लिए तैयार हो।

कह चुका है बहुत कुछ बस अब न आपे से निकल।
चल निडर बालक तू अब परलोक के रस्ते पै चल॥

(परशा चलाना चाहते हैं किन्तु हाथ रुक जाता है) हैं ! विधाता यह क्या ! छाती जलती है किन्तु हाथ नहीं उठता, हृदय में अग्नि भड़कती है किन्तु परशा नहीं चलता ! स्वभाव बदल गया, साहस भँग हो गया, बड़े-बड वीरों का वध करने वाला परशा आज निष्फल हो गया। ओह !

लड़ा जाकर अनेकों बार सुर, नर, देव, नायक से।
यहाँ जो हार भी मानी तो मानी एक बालक से॥

लक्ष्मण—महाराज ! आपकी बड़ाई और पराक्रम तो कई बार सुन चुका हूं अब कोई दूसरी कहानी भी सुनाइये; या तो कुछ कीजिए और या कान दबा कर सीधे चले जाइये। आप बातें क्या कर रहे हैं, मानों मुंह से फूल झड़ रहे हैं। (आंख मारना)

परशुराम—लेजा ! जनक ! यदि इस बालक की रक्षा चाहता है तो मेरे सामने से दूर लेजा। नहीं तो यह परशे की धारा इसका खून····· (दांत पीसना)

राम—नाथ ! इतना क्रोध करके अपने मन को क्लेश न दीजिए ! यह बालक है, इसे अज्ञान समझ कर ही क्षमा कीजिए।

परशुराम—बस सुन लिया ! यह जो कुछ कह रहा है, सब तेरे संकेत से कह रहा है। तुम दोनों ने एक प्रकार की मिली भगत गांठी है, जितना यह क्रूर है उतना ही तू अपराधी है।

— (क्रोध) सोचो ! मुनि का स्वभाव गर्म होता ही जा रहा है;

यदि इस अग्नि पर पानी न डाला जायगा तो फिर इस का शांत करना कठिन हो जायगा। (प्रकट) महाराज ! यह आपने अच्छी रीति निकाली है कि अपराध तो इनका है और भली-बुरी मुझे भी कह डाली है। सच कहा है :—

नीम कड़वा है उसे कोई पशु खाता नहीं।
जल समंदर का है खारो काम में आता नहीं ॥
आग में है तेज कोई पास तक जाता नहीं।
चन्द्रमा दोयज का हो तो ग्रहण में आता नहीं॥
है मेरी आधीनता से ही ये सारे हौंसले।
आप चढ़ते ही गये हम जिस कदर नीचे ढले ॥

परशुराम—हां ! तुझे भी धनुष तोड़ कर बड़ा अभिमान हो गया है। जरा यह तो बतला कि तू कब से बलबान हो गया है :—

राम—महाराज ! मैं कह चुका हूं कि हमें बालक समझकर ही क्षमा कर दीजिए, हां यदि कोई हमारे योग्य सेवा हो तो आज्ञा कीजिये।

परशुराम—अच्छा, यदि तुझे अपनी शक्ति पर इतना अभिमान है तो ले इस धनुष पर बाण चढ़ाकर दिखा कि कितना बलवान है।

राम—लाइये महाराज ! (धनुष बाण लेकर चिल्ला चढ़ाना)

परशुराम—(चरण छूकर) धन्य हो ! धन्य हो ! दशरथ कुमार धन्य हो ! अब मेरा सारा भ्रम दूर हो गया, मन का अहंकार चूर हो गया। निस्सन्देह रामावतार हो चुका है, आज आप से मिलकर मुझे परमानन्द प्राप्त हुआ है।

[राम और परशुराम का सम्मिलित गाना]

गाना

परशुराम—तुम शोक हरण भय भंजन हो।

राम—ऋषिराज तुम्हारी करुणा से।

राम—तुम लोभ-मोह-मद मोचन हो ।
परशुराम—महाराज तुम्हारी महिमा से ।
परशु०—तुमने जग में रघकुल-दीपक रोशन करके दिखलाया है ।
अभिमान, क्रोध, मद को मन से भक्तों के शीघ्र मिटाया है ।।
राम—तुमने बल तेज ऋषिजन का ससार को ज्ञात कराया है ।
आनन्द सकल जग का तुमने निज धर्म के हित बिसराया है ।।

परशुराम—तुम सन्त मुनिमन रंजन हो !
राम—ऋषिराज तुम्हारी करुणा से ।।
राम—तुम लोभ मोह मद मोचन हो !
परशुराम—महाराज तुम्हारी महिमा ने ।।

परशु०—तुम जीव अपावन को स्वामी भव-सिन्धु से पार लगाते हो ।
हो हितकारी तुम दीनों के और अशरण-शरण कहाते हो ।।
राम—तुम सदा ही अपनी वाणी में वेदों की महिमा गाते हो ।
हो कुशल ज्ञान विज्ञानों में, सत्कार जगत में पाते हो ।।

परशुराम—तुम राम हो दशरथ-नन्दन हो ।
राम—ऋषिराज तुम्हारी करुणा से ?
राम—तुम लोभ मोह मद मोचन हो ।
परशुराम—महाराज तुम्हारी महिमा से ।

[दोनों पर आकाश से पुष्प-वर्षा होना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(कौशल्या का महल)

[दशरथ और कौशल्या राम की याद कर रहे हैं]

कौशल्या—महाराज ! क्या आज भी कोई सूचना नहीं मिली ! मेरा मन तो राम-लखन के विरह में किसी प्रकार भी शान्ति नहीं पाता है । :—

दशरथ—प्रिय, क्या बताऊं ! जबसे दोनों पुत्र मुनि विश्वामित्र के साथ गए हैं तब से आज तक उनका कोई समाचार भी सुनने में नहीं आया। विधाता ! रक्षा करना। मेरे राजकुमारों की रक्षा करना !

कौशल्या—हाय हाय ! मैं कैसी माता हूं कि पुत्र के विरह में जीवित रह रही हूं—

गाना

राम-लक्ष्मण के बिना बेकार जीवन हो गया।
छा गया अन्धेर आंखों में, भवन वन हो गया ॥
आंख से पानी बरसता है मेरी आठों पहर।
माघ का सूखा महीना भी तो सावन हो गया ॥
फट नहीं जाती है छाती मौत भी आती नहीं।
वज्र का पापी कलेजा हाय साजन हो गया ॥
आप ने भी हे कुशल उनकी कोई सुध ली नहीं।
हाय इस सन्ताप में जीवन का भंजन हो गया ॥

दशरथ—प्रिय ! इस प्रकार घबराने से काम नहीं चलेगा, सन्तोष करने से ही यह आपत्ति का समय टलेगा। तुम तो आप ही बुद्धिमान हो सोचो, और समझो !

गाना

इस शोक में प्यारी तुम्हें सन्तोष होना चाहिये।
अपशगुन है इस तरह हर दम न रोना चाहिये ॥
आंखों का जल मन की जलन को शान्त कर सकता नहीं।
आंसू बहा कर रात-दिन मुखड़ा न धोना चाहिये ॥
दुख मान लेने से कभी, दुख में कमी होती नहीं।
सन्तोष है दुख की दवा इसको न खोना चाहिये ॥
जिसने विरह की आग दी, ठण्डी करेगा दस वही।
भगवान के आगे कुशल बस नम्र होना चाहिये ॥

दासी—(आकर) महाराज की जय हो! मन्त्री जी मिलना चाहते हैं।

दशरथ—जाओ ! उन्हें यहीं भेज दो।

[दासी का जाना, सुमन्त का आना]

सुमन्त—महाराज मिथिलापुरी से एक दूत आया है।

दशरथ—क्या सन्देश लाया है ?

सुमन्त—आपके नाम यह पत्र लाया है।

दशरथ—अच्छा तो इसे पढ़ कर सुनाओ !

सुमन्त—(पत्र पढ़ना)

श्रीमान् रघुकुल भूषण महाराज दशरथ प्रणाम ! समाचार इस प्रकार है कि मैंने अपनी सुपुत्री सीता का स्वयंवर रचाया और न्यौता भेजकर सब राजकुमारों को बुलाया। मेरा यह प्रण था कि जो वीर शम्भु-चाप का चिल्ला चढ़ाएगा, वही सीता का पति कहलायेगा। सभी ने अपना अपना जोर लगाया किन्तु चाप को कोई हिलाने भी न पाया। इस पर मुझे बड़ी निराशा हुई और मैंने यह बात कह डाली कि संसार में क्षत्रियों की पामाली हो गई; पृथ्वी वीरों से खाली हो गई। इस पर आपके छोटे पुत्र लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और उन्हें श्री राम ने ही समझाया अन्त में गुरु का आज्ञा पाकर कर्मवीर राम ने धनुष उठाया और सब वीरों को दिखाकर उसको कई टुकड़े बनाया। अब राम और सीता का शुभ विवाह रचाना है और इसीलिये आपको शीघ्र बारात समेत आना है।

आपका दास

'जनक'

दशरथ—अहा देव ! तुम बड़े दयावान हो ! तुमने सब प्रकार से मेरा कल्याण कर दिया, अब राम के शुभ विवाह का अवसर भी

प्रदान कर दिया। :—

बड़े दाता हो आठों याम ही हे नाथ देते हो।
जो तुम देने पे आते हो तो दोनों हाथ देते हो॥

कौशल्या—(प्रसन्न होकर) अहा विधाता! तुम्हारी गति कोई नहीं जानता। तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारी बाहें बहुत लम्बी हैं।

चौपाई—शुभ अवसर शुभ काल दिखायो।
मन-चिन्ता-सन्ताप मिटायो॥
तव करुणा महिमा किमि गाऊं।
चरनन सीस जगत-पति नाऊं॥

दशरथ—अच्छा मन्त्री जी! दूत को सुख पूर्वक ठहराओ! नाच-रंग का प्रबन्ध कराओ और जनकपुर चलने के लिये बारात सजाओ।

सुमन्त—जैसी आज्ञा महाराज!

[सुमन्त का जाना, दृश्य परिवर्तन पर बारात की सजावट, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि का दिखाई देना और बारात चढ़ना।]

दृश्य पांचवां

(जनकपुर में विवाह-मण्डप)

[राम और सीता का विवाह हो रहा है, आनन्द-बधाई गाई जा रही है]

गाना-बधाई

गाओ जी गाओ! रङ्ग बधाई गाओ।
दूल्हा रंगीला है दुल्हन सजीली—दोनों की बेल बढ़ाओ।
गाओ जी गाओ…
संग सहेली हैं नई नवेली—राग सुहाग के गाओ।
गाओ जी गाओ…
जनकपुरी के भाग खुले हैं—दशरथ ब्याह रचाओ।

गाओ जी गाओ···
नर नारी सब मंगल गावें—कुशल अमर पद पाओ
गाओ जी गाओ···

(अग्निहोत्र और फेरों का दृश्य)

राजपुरोहित—आज का सकल समाज भगवान से प्रार्थना करता है कि वर-वधु आनन्द से जीवन बिताए; ससार की बाधायें इनके मार्ग में न आएं। दोनों सदैव अनुरागी हों, विश्व में यश और कीर्ति के भागी हों! बोलो मंगल करण सच्चिदानन्द भगवान की जय!

(सबका जयघोष करना)

[दृश्य परिवर्तन पर—स्त्री समाज में छन्द परम्परा]

एक स्त्री—राजकुमार! अब कोई सुन्दर छन्द सुनाओ और राजरानी से पुरस्कार पाओ!

राम—जैसी इच्छा—

छन्द

जागो जागो रे मनुज, नहीं जग तेरा!
अन्तरा (१)—काम क्रोध मद लोभ उचक्के, छोड़ सग भत बन चेरा।
जागो जागो;·····
साधु-सन्त सत्सग किया कर, छूट जाय जग का फेरा।
जागो जागा·····
चंगल माया जग की झूठी—दुष्टा ने क्यों मन घेरा।
जागो जागो·····
नाम प्रभु का कुशल है सच्चा—[illegible] करता तेरा मेरा॥
जागो जाग ·····

(राजरानी और अन्य स्त्रियों का पुरस्कार देना, परदा गिरना)

आरती-ध्वनि

छठा अंक

दृश्य पहला

(दशरथ—दरबार)

दशरथ—(दर्पण में मुंह देखकर) अहा ! अब तो कान के पास कुछ श्वेत बाल भी निकल आए हैं जो जवानी के अन्त और बुढ़ापे के आगमन का सन्देश लाये हैं। :—

अन्त होना चाहते हैं अब मेरे जीवन के दिन।
कह रहा मुझसे बुढ़ापा काल की घड़ियों को गिन॥
बुझ गया दीपक तो फिर होगी कहां से रोशनी।
क्या भरोसा स्वप्न जैसी है जगत को जिन्दगी॥

मानव-जीवन क्षणमात्र का है, ढलती हुई छाया है, नदी के किनारे का वृक्ष है, जो न जाने जल का वेग आ जाने से कब गिर पड़े। रेत की दीवार है, कौन कह सकता है कि भौंचाल की टक्कर से कब उखड़ पड़े।

इक झकोला है पवन का, बुलबुला जल-धार का।
टिमटिमाता सा दिया है जीव इस संसार का॥
काल की गोदी में जो कुछ दिन जिया तो क्या हुआ।
रह गया तो बात क्या और चल दिया तो क्या हुआ॥

वशिष्ठ जी—राजन्, आज विचारों की उलझन में क्यों पड़ रहे हो ? सब प्रकार से सुख-शान्ति होते हुए भी इतनी निराशा जनक बातें किस लिए कह रहे हो ?

दशरथ—महाराज ! युवावस्था के चाव, मन की उमंगें और हृदय के

उत्साह सब मद्धम पड़ते जा रहे हैं, बुढ़ापे के चिह्न और मृत्यु के ढंग स्पष्ट रूप से दृष्टि में आ रहे हैं। मैं सोच रहा हूं कि—

जो हलका मेरे सिर से राज रूपी भार हो जाये।
प्रजा का मेरे पीछे कोई पालन हार हो जाये॥
तो मैं निश्चन्त हो परलोक की भी साधना करलूं।
बनों में जाके अपनी आत्मा का कुछ भला करलूं॥

वशिष्ठ जी—राजन्! आपका मन पवित्र है और इसमें जो अभिलाषाएं जन्म लेती हैं वे भी पवित्र होती हैं। दास्तव में यह विचार बड़ा ही सुन्दर है, आपको अपना अगत अवश्य बनाना चाहिये।

दशरथ—सुनिये महाराज! राम मर दुलारे हैं। कुटुम्ब, प्रजा, शत्रु और मित्र सबको प्यारे हैं। यदि आप राम को युवराज बनाए और उनके सिर पर राजमुकुट पहनाएं तो मेरे मन की समस्त चिन्ताओं को मिटाएं।

चौपाई—स्वामी राम बनावहु राजा।
एहि इच्छा प्रभु नगर समाजा॥
शील स्वभाव योग सब काहू।
प्रजा-हेत दारुण-दुख-दाहू॥

सुमन्त—हां महाराज! ऐसे पवित्र कार्य में विलम्ब न कीजिये, कोई शुभ महूर्त देखकर इसकी घोषणा करा दीजिये।

वशिष्ठ जी—(विचार कर) राजन्! इसके लिये कल का दिन ही उत्तम है, इसलिए तीर्थों का जल मंगवाओ और फल, फूल, चन्दन, केशर आदि एकत्र कराओ।

दशरथ—मन्त्री जी! शीघ्र ही सारा प्रबन्ध कर दो, राजमहल और और दरबार को सजवादो, नगर में मुनादी करा दो कि सारी प्रजा आनन्द मंगल गाए और अपने-अपने घर-द्वार को सजाए.

प्रत्येक घर-में दीपावली की जाये और ब्राह्मणों तथा भिखारियों को दान दिया जाय।

सुमन्त—जैसी आज्ञा महाराज !

(जाना, परदा गिरना)

दृश्य दूसरा

[देवताओं का सरस्वती की विनती करना]

देवता—हे माता सरस्वती ! तुम देख रही हो कि अयोध्या में आनन्दमंगल गाए जा रहे हैं; राम के राज तिलक के उत्सव मनाए जा रहे हैं। किन्तु यह मंगल हमारे अमंगल का कारण है; राम का राज-तिलक, हमारे शोक का आगमन है। यदि राम राज काज में फंस जाएंगे तो दुष्ट राक्षस और भी उत्पात मचाएंगे और साधु महात्माओं को दिन काटने दुर्लभ हो जाएंगे।

सरस्वती—(स्वयं) बड़ा ही टेढ़ा प्रश्न है ! अब इस समस्या का सुलझना सम्भव दिखाई नहीं देता।

देवता—हे माता ! संकोच को छोड़कर शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय करो जिस में राम राज्य को छोड़ कर बनों में चले जाएं और राक्षसों को मार कर सन्तों का संकट मिटाए।

सरस्वती—क्या करूं क्या न करूं ? यदि राम वन को जाएंगे तो सारे अयोध्या वासी पाले की मारी हुई लता के समान मुरझा जाएंगे। और यदि राम को राज मुकुट पहनाया जाएगा तो ऋषि समाज महान कष्ट पाएगा।

देवता—माता सरस्वती ! तुम इसका संकोच न करो; राम को न राज्य में सुख है और न वनवास में दुःख। प्रजा वासी अपने मोह के लिये ही दुख पाते हैं, नहीं तो भगवान किस के बन्धन

में आते हैं। उनको तो संसार को शान्ति में शान्ति है।

सरस्वती—अच्छा तो इसका कोई सहज उपाय बताओ !

देवता—हे माता ! तुम केकैयी की दासी मंथरा के कण्ठ में बैठ जाओ और केकैयी को उल्टी सीधी पट्टी पढ़ाओ, यदि उस पर यह जादू चल जाएगा तो हमारा काम अवश्य बन जाएगा।

सरस्वती—हां ठीक विचार है, मैं इसी समय जाती हूं और अपनी माया का जाल फैलाती हूं। निःसन्देह इसी में लोक कल्याण है।

[सरस्वती का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(अयोध्या में मनादी हो रही है, लोग घरबार की सफाई करते और मंगल-बधाई गा रहे हैं)

मनादी वाला **गाना**

मेरी विनती सुनो जी, मेरी विनती सुनो।
नगरी अयोध्या के वासी जनो।।
कल को राम बनेंगे राजा यह शुभ अवसर आया।
मुनिराज ने सोच समझकर यह ही लगन बताया।।
मेरी विनती···
राजा दशरथ की आज्ञा है सुन लो करके कान।
सब अपने घर-बार सजाओ गाओ मगल-गान !।
मेरी विनती···
दीपावली रात को होगी सजें महल दरबार।
परम सुहाई रंग बधाई गावें सब नर-नार।।
मेरी विनती···

नगरवासी (१)—अहा विधाता ! तेरी गति कैसी न्यारी है कि प्रातः काल ही राम के राजतिलक की तैयारी है !

दूसरा—हां भाई ! हमारी आशाओं का कमल खिल रहा है, जो राम को प्रजा-पालन का अवसर मिल रहा है।

[मंथरा का नगरी की शोभा देखते हुए आना और सरस्वती का उस पर मोहनी डालना।]

मंथरा—क्यों भाई ! आज यह कैसी उत्सव मनाया जा रहा है ? नगर को क्यों सजाया जा रहा है ?

नगरवासी—अरी मंथरा ! क्या तुझे यह भी पता नहीं कि कल राम को राजतिलक होने वाला है।

मंथरा—हूं ! यह बात है ? (गम्भीर विचार में पड़ जाना)

(मंथरा का जाना, परदा गिरना)

दृश्य चौथा

(केकैयी का महल)

कैकेयी—आनन्द के दिन भी कितनी शीघ्रता से चले जाते हैं कि अनुभव में ही नहीं आते हैं। राम के विवाह को एक वर्ष बीत गया और ऐसा प्रतीत होता है, मानो कल की बात है।

(मंथरा का आना और चुपचाप खड़े हो जाना)

कैकेयी—दासी ! आज तो तूने बड़ी देर लगाई, सच बता नगर से क्या-क्या समाचार लाई ?

(मंथरा शान्त रहती है और लम्बे २ सांस लेती है)

कैकेयी—मंथरा ! आज तो तेरा मन कुछ उदास सा प्रतीत होता है।

(मंथरा फिर भी चुप रहती है)

कैकेयी—अरी चंचला ! आज तेरी फर-फर चलने वाली जबान को क्या हो गया ? क्या तुझे सांप सूंघ गया ?

[मंथरा फिर भी चुप रहती है)

कैकेयी—अरी कुछ तो बतला ! आखिर क्या बात है ? राम, लक्ष्मण,

भरत और शत्रुधन तो कुशल से हैं ? राज-दरबार में तो शांति है ? आज तू मौन क्यों हो रही है ?

मन्थरा—मौन न हूं तो क्या करूं रानी जी ! तुम्हारे सर्वनाश को देख कर मेरे मन में बड़ा दुख होता है। क्या तुमने नगरी की शोभा नहीं देखी है ? क्या तुम्हें घर-घर में बधाई नहीं सुनाई पड़ रही है ? अफसोस :—

कमर बांधी है राजा ने तुम्हारे ही मिटाने पर।
खुलेगा भेद सारा कुछ समय के बीत जाने पर ॥

कैकेयी—क्यों ? ऐसा क्या समाचार है ?

मन्थरा—क्या तुम्हें पता नहीं कि कल राम को राजा बनाया जा रहा है ?

कैकेयी—(प्रसन्न होकर) राजा ! मन्थरा ! क्या तू सच कहती है ? क्या वास्तव में कल राम को सिंहासन पर बिठाया जायगा ?

मन्थरा—हाँ, बिलकुल सच कहती हूं।

कैकेयी—तब तो बड़े आनन्द का समागम है, बड़ी प्रसन्नता की बात है। सचमुच मेरी आशाओं का कमल खिलने वाला है; और मन्थरा, याद रख कि तुझे भी भरपूर पुरस्कार मिलने वाला है। ले, यह हार सम्भाल और फिर दूंगी। (हार देकर)

खुले हैं भाग्य हम सब के, घड़ी शुभ आज आई है।
तुझे कहना था हे दासी, बधाई है, बधाई है ॥

मन्थरा—बधाई तो जिनके लिये है, उन्हीं के लिये है। तुम्हारा अन्धकार तो देखती आंखों मिटाया जा रहा है जो भरत को ननिहाल भेज कर राम को सिंहासन पर बिठाया जा रहा है। हाय ! हाय ! :—

लुट रहा है घर तेरा और तू हुई है बेखबर।
क्या यों ही बैठेगी तू आंखों पै पट्टी बांधकर ॥

कैकेयी—अरी निर्भाग ! तू क्या बोलने लगी ? ऐसे अवसर पर तो तुझे आनन्द मंगल गाना चाहिये भारी उत्सव मनाना चाहिये-

धर्म का प्यारा है जो, और देश का जो प्राण है।
वह बने राजा तो फिर हर एक का कल्याण है॥

मन्थरा—जब तक तुम्हें अपने हित-अनहित को पहचान नहीं तभी तक ऐसी बातें सुनातो हो ? जब तक आगा-पोछा नहीं देख सकती तभी तक मन्थरा को दोष लगाती हो। रानी ! मैंने संसार देखा है, मुझे दुनियां के ऊंच-नीच का अनुभव है; मैं इस आनन्द बधाई का रहस्य जानती हूं; मुझे राम के राज-तिलक में कोई गहरा भेद दिखाई दे रहा है।:-

क्या खबर तुमको छिपा है क्या सुनहरी झोल में।
देख लोगी आप क्या है ढोल की इस पोल में॥

कैकेयी—चुप पापिन ! यदि घर में भेद डालने वाली बातें कहेगी तो तेरी जिह्वा तालू से निकलवा दूंगी। यदि राम को दोष लगायेगी तो तुझे जीती ही अग्नि में जलवा दूंगी। :—

खुशी हो राम की तो राज, धन, दरबार, घर वारूं।
भरत जैसे हजारों लाल अपने राम पर वारूं॥

मन्थरा—क्यों न हो ! जब किसी की अशुभ घड़ी आती है तो उसकी बुद्धि ऐसी ही हो जाती है। मैं तुम्हारे हित की कहती हूं और तुम मुझे पापिन बताती हो, मैं तुम्हारा अगत बनाती हूं और तुम मुझे गालियां सुनाती हो। लो जाने दो, मुझे तो कुछ मिलने से रहा, मैं तो दासो की दासो ही रहूंगी। फिर तुम जानो और तुम्हारा काम।

आज तुम जिसको समझती हो ढिटाई मेरी।
कुछ समय बाद खुलेगी यह भलाई मेरी॥

गाना

टेक—रानो बनो है क्यों अज्ञान होगा दुर्लभ जन्म बिताना।

अन्तरा (१)—सार सुख के ये भंडार—होंगे सपने के आकार।
फिर तू पछतावे हरबार, मेरा कहा नहीं जो माना ॥
रानी बनी है···

(२) क्यों तू बन बैठी गम्भीर, छूटे जब चुटकी से तीर;
फिर नहीं बने कोई तदवीर-दूभर होगा यत्न बनाना॥
रानी बनी है···

(३) तेरे साथ हुआ अन्याय, मुझ को चिन्ता तेरी खाय;
अवसर निकल हाथ से जाय, सारी उम्र पड़े पछताना॥
रानी बनी है···

(४)मैंने सच सच किया बखान, अब तू मान चाहे मत मान;
तेरे मिटने का सामान, तुझको अब तक होश जरा ना॥
रानी बनी है···

कैकेयी—मन्थरा ! आज तो तू अनोखी सी बातें कह रही है। मेरी समझ में तेरा तात्पर्य बिल्कुल नहीं आया ?

मन्थरा—आ जायगा ! जब तू रानी से दासी बन जायगी तब सारा तात्पर्य समझ में आ जायगा ! भोली रानी ! तू राजा को क्या समझती है ? तेरे साथ घोर अन्याय होने वाला है; राजा ने एक भारी षडयन्त्र रच डाला है ।:—

मिलेगा धूल में जीवन का साज जब तेरा।
तो याद आयेगा रानी ! तुझे कथन मेरा ॥

कैकेयी—अरी मन्थरा ! अब तो तू यहां तक बढ़ने लगी कि राम के साथ महाराज पर भी सन्देह करने लगी। सच बता आज तूने कैसा जाल फैलाने का निश्चय किया है। अरी मूर्खा,क्या बुद्धि को बिल्कुल ही बेच डाला है ?

गाना सम्मलित कैकेयी-मन्थरा (लावनी)

कैकेयी—

कुब्जा ! कुटनी! पापिन ! डायन ! क्यों घर में आग लगाती है।
क्यों सूरज पर मिट्टी डाले ? अमृत में जहर मिलाती है ॥
दुष्टा ! इतना तो समझ जरा किस कुल का भोजन खाती है।
उस कुल को ही हे दुर्भागिन ! तू नष्ट कराना चाहती है ॥

मन्थरा—

भोली रानी नादान न बन, बातों पर मेरी कान लगा!
अग्नि के अन्दर पांव न रख, छाती में न अपनी बान लगा ॥
दुश्मन हो अपनी चालों में, अफसोस तुझे फिर होश न हो।
यह प्यार नहीं है धोखा है रानी ! रानी ! मदहोश न हो ॥

कैकेयी—

क्या कहती है निर्लज्ज बता, महाराज को मन से प्यारी हूं।
उनके कारण ही सुख-वैभव और राजभोग अधिकारी हूं ॥
जिस राम को दोष लगाती है वह इन [illegible] का तारा है।
इक जान है वह सौ जानों की प्राणों से मुझ को प्यारा है ॥

मन्थरा—

अच्छा जो प्यारा है तो सही, प्यारे का अपने प्यार भी देख।
यह तेल जो तूने देखा है रानी अब इसकी धार भी देख ॥
बस मैं तो इतनी कहती हूं फिर मुझ को दोष नहीं देना।
बूढ़ी मन्थरा निर्दोष हुई अब करना हो सो कर लेना ॥

कैकेयी—

दासी कैसी बातें कहती ? कुछ समझ नहीं कुछ ज्ञान नहीं।
बन बैठी ऐसी मूर्ख तू क्यों ? अनहित-हित् की पहचान नहीं ॥
पति-पुत्र से ही जब प्रेम नहीं तो फिर जग में क्या रक्खा है।
उनके सुख में नारी को सुख, उन के दम से ही दुनिया है ॥

मन्थरा—

हां दुनिया है, यह दुनिया है, यह स्वार्थ की सारी दुनिया है।

हैं स्वार्थ के भाई, पुत्र पति सबके मन स्वार्थ की माया है ॥
जो स्वार्थ नहीं तो कुछ भी नहीं, सारी ममता मुँह देखी है।
इस स्वार्थ की अन्धी दुनिया में क्यों स्वार्थ हीन तू बैठी है ॥

कैकेयी—

अच्छा मंथरा ! आगे को आ, बतला इस में क्या हानी है ?
जो भरत है सोई राम भी है दोनों में कौन लासानी है ?
इक आंख की दोनों पुतली हैं, इक दिल की दोनों आशा हैं।
इक घर के दीपक हैं दोनों, इक वृक्ष की दोनों शाखा हैं ॥

मन्थरा—

रानी जो होनी है होगी, होनी होकर टल जायेगी।
लेकिन तू मेरी बातों पर सिर पीट-पीट पछतायेगी ॥
यह राम जो तेरा प्यारा है और कुशल लाडला बेटा है।
वह ही तुझको गाली देगा जो तुझ को माता कहता है ॥

कैकेयी—हां मन्थरा ! यह बात तो कुछ मन को लगती है, स्वार्थ के वश होकर नित नये रग बदलती है।

मन्थरा—यही तो मेरा तात्पर्य है। राज्य मिलने से पहले जो राम की दशा है वह बाद में कदापि न रहेगी, देख लेना कि तू सम्मान के बदले अपमान का कष्ट सहेगी !

कैकेयी—परन्तु इसमें महाराज का क्या धोखा है ?

मन्थरा—यदि धोखा नहीं तो भरत की अनुपस्थिति में ही राम को राजा क्यों बनाया जा रहा है ? ऐसे महान कार्य के लिये कल का दिन ही क्यों नियत किया जा रहा है ?

कैकेयी—हां ठीक है। तेरा विचार बिलकुल ठीक है किन्तु इस समस्या का सुलझना भी तो आसान नहीं !

आसान और बिल्कुल आसान।

[illegible] बता जल्दी बता ! जो कुछ तू कहेगी, मैं वही